P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-6* September- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 Remarking An Analisation

कृषक व कृषि का व्यावसायीकरण : एक पुर्नसमीक्षा

प्रिया सिंह
शोध छात्रा,
समाज शास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

सारांश

इस अध्ययन में भारतीय कृषिक समाज पर राज्य द्वारा निर्मित की गयी विभिन्न नीतियों व कार्यक्रमों को पड़ने वाले प्रभाव को देखने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप से हरित क्रान्ति व आर्थिक सुधार नीति कार्यक्रमों के अन्तर्गत किस प्रकार से भारतीय कृषिक समाज में नवीन तकनीकि के समावेश, विविध आधुनिक निवेश पद्धतियों के आगमन के फलस्वरूप बढ़ते बाजारीकरण/व्यावसायीकरण के भारतीय कृषिक समाज में पढ़ते प्रभाव ने केवल कृषि निवेश की लागत में वृद्धि की बल्कि विविध कृषिक सामाजिक संरचना व सामाजिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया। पारिवारिक व सामुदायिक सम्बन्धों का कमजोर होना, भूमि का पण्यीकरण होना खाद्य फसलों के स्थान पर नगदी फसलों का महत्व बढ़ना, अधिक उत्पादन के लिए उर्वरक व कीटनाशक के अधिक प्रयोग की प्रतिस्पर्धा में कृषक के ऊपर निवेश की लागतों के सन्दर्भ में बोझ बढ़ा दिया तथा अनिश्चित मौसमी दशाओं का भी व्यापक प्रभाव भारतीय कृषिक क्षेत्र पर रहा है। कह सकते हैं कृषकों की बढती आत्महत्या का प्रमुख कारण कृषि क्षेत्र में बाजार पर व्यवासायीकरण की बढ़ती हुई प्रक्रिया है।

मुख्य शब्द : पीजेन्ट्री, व्यावसायीकरण, आर्थिक सुधारनीति, कृषक आत्महत्या।

प्रस्तावना

पीजेन्ट्री सम्बन्धित अवधारणा की स्पष्ट व्याख्या के लिए विभिन्न रसियन स्कालर्स की प्रमुख रूप से उत्तरदायी माना जाता है। इस श्रेणी में कार्लमार्क्स के साथ लेनिन, शेनिन चायनाव (रसियन स्कालर्स) आदि विद्वानो का नाम प्रमुख है। पीजेन्ट्री शब्द ऐसे जनसमूह का प्रतिनिधित्व करता है। जिसका सम्बन्ध जमीन से है। मतलब विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषा के अनुसार निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि जो अपने परिवार के श्रम के सहयोग से अपने और अपने परिवार के उपभोग के लिये उत्पादन करता है।

परम्परागत समाज में कृषक परम्परगत उपकरणों की सहायता से कृषि कार्य सम्पादित करता था। इन परम्परागत साधनों के अन्तर्गत स्वयं व स्वयं के परिवार का श्रम, हल, पशु संसाधन तथा सिचाई के परम्परागत साधनों जैसे–कुऑ, तालाब आदि का प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार से प्राप्त उत्पादन को स्वयं को परिवार तथा सामाजिक सम्बन्धों के अन्तर्गत आदान प्रदान कर उपभोग के लिये संग्रहित करके रखा जाता था। इसी उत्पादन में से कुछ हिस्सा अगली फसल की बुआई के लिये संग्रहित कर लिया जाता था। चूँकि तत्कालीन समाज में संयुक्त परिवार की अवधारणा थी। अतः कृषि से सम्बन्धित प्रत्येक चरण के कार्य के लिए पारिवारिक श्रम ही पर्याप्त था। पारिवारिक श्रम के लिए अतिरिक्त भारत जैसे कृषिक समाज के अन्तर्गत जो जजमानी जैसी अवधारणायें प्रचलित थी। उनके माध्यम से वर्ष भर के विविध कार्यो के लिए श्रमिक उपलब्ध थे। वे भी परिवार के सदस्य की भॉति ही माने जाते थे। हालांकि अस्पृश्यता जैसी अवधारणाऍं विद्यमान थी, जिसके लिये उन्हें नगद या वस्तु के रूप में भुगतान/अदा किया जाता था। (विलियम वाइजर, 1936)।

साहित्यावलोकन

विभिन्न विद्वानों द्वारा पीजेन्ट्री की अवधारणा

शेनिन (1977) ने अपने अध्याय में जो कि रसियन कृषिक समाज पर आधारित है, पीजेन्ट्री की अवधारणा को फैमिली फार्म (Family Form) के सन्दर्भ में परिभाषित करने का प्रयास किया है। इन्होनें पीजेन्ट्री के अन्तर्गत छोटे कृषिक उत्पादकों (Small agriculture producers) को सम्मिलित किया है। जो सरल औजारों व अपने परिवार के श्रम का प्रयोग करके उत्पादन करता है। पीजेन्ट्री एक सामाजिक संगठन के रूप में कार्य करता है। उत्पादन प्रमुखतः स्वयं के उपयोग के लिये करता है। इसके अतिरिक्त इनका उत्पादन जिनके पास राजनीतिक व आर्थिक शक्ति होती है, उनके प्रति भी केन्द्रित होता है।

लेनिन (2009) ने भी रसियन समाज के सन्दर्भ में पीजेन्ट्री की अवधारणा का अध्ययन किया है। अपने अध्ययन में इन्होनें कृषिक समाज में पूँजीवाद के उद्भव तथा इस कारण कृषिकों के मध्य हुए विभेदीकरण के आधार पर कृषक वर्ग संरचना को समझने का प्रयास किया है। पीजेन्ट्री अपने उपभोग तथा खेती दोनो के सन्दर्भ मे पूर्व रूप से बाजार के अधीन है। पहले जहाँ इनके साथ सम्बन्ध सामुदायिक भावना पर आधारित थे। वही अब सम्बन्ध वस्तु अर्थव्यवस्था पर आधारित है। प्राचीन पितृसत्तात्मक समाज का पूर्ण रूप से विघटन हो चुका है। जिसके स्थान पर नये प्रकार के ग्रामीण निवासियों का उदय हुआ है। इसका प्रमुख कारण सम्पत्ति असमानता का तथा भूमि का वस्तु (Commodity) के रूप में रूपान्तरण होना है। नये ग्रामीण निवासियों के अन्तर्गत इन्होनें दो प्रमुख वर्गो 1. ग्रामीण बुर्जआ वर्ग और 2. ग्रामीण सर्वहारा वर्ग की बात की है। इसके अलावा इन्होने एक तीसरे वर्ग मध्य कृषक की अवधारणा भी दी है। जो हमेशा अनिश्चितता की स्थिति में रहता है। इसके अतिरिक्त लेनिन ने सर्वहाराकरण, ऋणग्रस्तता, प्रवास तथा विकृषकीकरण की प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला है।

वेबर (1977) ने भी अपने अध्ययन में जो कि ईस्टर्न जर्मनी के फार्म लेबरर्स की समस्या पर केन्द्रित था। यह पाया कि जो कृषिक क्षेत्र है उसमें व्यवसायीकरण की प्रक्रिया बढ़ने से जो वहाँ का प्रभुत्व वर्ग था, जमीन से सम्बन्धित मतलब कि Estate owners उनके लाभ कमाने की आकांक्षा में वृद्धि हुई है। इस लाभ कमाने की आकांक्षा ने फर्म लेबरर्स के स्थान पर डे लेबरर्स की नियुक्ति ने प्रधानता दी। प्रतिदिन के वेज से इनके परिवार की सभी जरूरते पूरी नहीं हो पा रही थी। अतः इनका जीवन स्तर बहुत ही निम्न कोटि का हो गया। पहले फार्म लेबरर्स को एस्टेट में ही स्वयं के लिये अलग से जमीन, मवेशी, आवास, वस्तु तथा नगद भुगतान दिया जाता था। लेकिन फार्म लेबरर्स की घटना विलुप्त होने लगी। अतः ग्रामीण श्रमिक के मध्य सर्वहाराकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हुई, परिणामस्वरूप यहाँ भी ग्रामीण श्रमिकों के मध्य प्रवास की प्रघटना का जन्म हुआ।

चायनॉव (1986) ने भी रसियन समाज के सन्दर्भ में पीजेन्ट्री का अध्ययन किया। इनके अनुसार पीजेन्ट hired Labour का प्रयोग नहीं करते, यह पूर्ण रूप से परिवार के सदस्यों के श्रम पर आधारित होता है, यह उत्पादन प्रणाली मार्क्स द्वारा बतायी गयी उत्पादन प्रणाली के विपरीत है। जिसमें पूँजीवाद के लक्षण नहीं है। पीजेन्ट फैमिली फार्म का प्रमुख उद्देश्य परिवार की आवश्यकताओं को सुरक्षित करना है।

इस प्रकार अधिकांश समाजों में पीजेन्ट्री को बाजार तथा व्यवसायीकरण प्रक्रिया ने प्रभावित किया। जैसा कि विभिन्न विद्वानों द्वारा यह निष्कर्ष दिया गया कि पीजेन्ट्री सोसाइटी एक stationary society है (वानहॉटे एरिक 2016)। जहॉ पर अर्थव्यवस्था कृषिक आधारित क्रियाओं से प्रभावित रहती है तथा जो कुछ भी परिणामस्वरूप प्राप्त होता है वह बाजार प्रक्रिया में न जाकर स्वतः उत्पादकों द्वारा उपभोग किया जाता है (शेनिन 1977, लेनिन 2009, वेबर 1977, चायनॉव 1986, वानहॉटे एरिक 2016)। लेकिन अधिकांश समाजों में पीजेन्ट्री को बाजार तथा व्यवसायीकरण प्रक्रिया ने प्रभावित किया। जिसके परिणामस्वरुप जहाँ एक ओर Farming पारिवारिक व सामुदायिक जीवन पर आधारित था वही इसका व्यवसायीकरण हो गया जिससे सम्पूर्ण कृषिक सा0व0आ0 संरचना में परिवर्तन हो गया।

समकालीन कृषिक समाज में बहस का मुद्दा यह है कि 'पीजेन्ट्री' की प्रकृति क्या है? तथा इसे कैसे परिभाषित/विश्लेषित किया जा सकता है? इस सन्दर्भ में हेनरी बर्नस्टीन (2001) का अध्ययन महत्वपूर्ण है जिसमें इन्होंने 'Death of Peasantry' द्वारा एरिक हाब्सबाम के इस कथन का विश्लेषण करते हुये, यह निष्कर्ष निकाला है कि–''पीजेन्ट्री' का देहावसान या अन्त मान लेना अतिशयोक्ति होगी; क्योंकि पीजेन्ट्री का अन्त नहीं हुआ बल्कि यह अब Petty commodity producers में रूपान्तरित हो गयी है। हेनरी बर्नस्टीन ने विश्लेषण करते हुये लिखा है कि पीजेन्ट्री न्यूनाधिक रूप से Specialized commodity production में लगे हुये हैं तथा Semi capitalists और Semi workers दोनों ही रूपों में साथ–साथ कार्य करते हैं।

इसी प्रकार से भारतीय कृषि समाज को भी विविध घटनाओं ने प्रभावित किया जैसे ब्रिटिश राज में स्थायी बन्दोबस्त प्रणाली/Permanent statement system, हरित क्रान्ति और LPG Policy।

स्वतंत्रता पूर्व भारतीय कृषिक समाज

भारतीय परिदृश्य में परम्परागत कृषिक समाज में सामुदायिक स्तर पर खेती की प्रणाली का प्रचलन था। शेनिन 1971 द्वारा वर्णित की गयी कुछ विशेषतायें भारतीय कृषि समाज में भी लागू होती है। जैसे पूर्व पूँजीवादी समाज में भारतीय कृषिक उत्पादन सरल उपकरण मवेशियों की सहायता से नातेदारी आवश्यकताओ पर आधारित था। जैसे कि राबर्ट रेड फील्ड ने ग्रामीण समाज को 'लिटिल कम्यूनिटी' कहकर सम्बोधित किया है।

लेकिन ब्रिटिश प्रशासन के आगमन के पश्चात् भारतीय कृषिक समाज के सामुदायिक स्वरूप में परिवर्तन आया तथा इसमें असमानता व शोषणकारी तत्वों में अपनी जड़े जमाना प्रारम्भ किया। जमींदारी प्रथा जैसी व्यवस्थाओं जो कि पूरी प्रशासनिक व्यवस्था की आर्थिक आवश्यकताओं का प्रमुख स्रोत रही, नगद उपज के रूप में प्राप्त होने वाला भूमिकर उद्योगों के लिये कच्चे माल की मांग आदि व्यवस्थाओं ने सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक संरचना के कृषिक समाज की परिवर्तन ला दिया। अधिक से अधिक कर की मांग और उसे पूरा करने की चिन्ता के कारण कृषि के व्यवसायीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप नगदी फसलों के उत्पादन की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी हुई।

इस सम्पूर्ण परिघटना के चलते कृषिक सामाजिक आर्थिक संरचना से महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। कर वसूली करने वाले प्रशासन तथा वास्तविक उत्पादन करने वाले काश्तकार के बीच अनेक मध्य समूहों (Middel) का रूप उदय हुआ। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादित के

पास उपज का नाममात्र का भाग शेष रहता था। इसी क्रम में सूदखोर वर्ग के उदय ने वास्तविक उत्पादनकर्ता की मुश्किल और बढ़ा दी तथा कर्ज के चक्र में फँसकर वह रहने लगा। लेकिन कहीं न कहीं तत्कालीन समाज में भी सामुदायिक भावना इतनी प्रबल थी कि कृषक जनसमूह होने वाले शोषण का मिल जुलकर सामना करते थे। समकालीन समाज की तुलना में आत्महत्या इतनी अधिक नहीं थी। जैसा कि दुर्खीम ने भी अपनी पुस्तक में कहा है कि सामाजिक सम्बन्धों की घनिष्ठता मानसिक बल प्रदान करती है। जिससे आत्महत्या जैसी मनोवृत्तियों में कमी रहती है।

इस प्रकार कहना उचित है कि जैसा कि ए.आर. देसाई (2012) ने भी अपने अध्ययन में कहा है कि उपनिवेश काल से ही भारतीय कृषि व्यवस्था, व्यावसायीकरण की प्रक्रिया से परिचित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त कर वसूली के लिये नयी व्यवस्थायें लागू करने के परिणामस्वरूप भारतीय कृषि व्यवस्था में असमानता शोषण जैसे दमनकारी तत्वों का समावेशन हुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात् कृषिक समाज

स्वतंत्रता के पश्चात् नीतिनिर्माताओं का पहला उद्देश्य कृषिक समाज में व्याप्त असमानता को दूर करना था जो कि ब्रिटिश प्रशासन तथा भारतीय जाति व्यवस्था का परिणाम थी। इस सन्दर्भ में जमीदारी उन्मूलन एक्ट, सामुदायिक विकास कार्यक्रम और पंचायती राज व्यवस्था जैसे कार्यक्रमों का कृषिक समाज में क्रियान्वयन किया गया। इन नीतियों और कार्यक्रमों का ऐच्छिक परिणाम तो नहीं प्राप्त हुआ लेकिन इसके परिणाम स्वरूप भारतीय कृषिक परिदृश्य में जो धीरे–धीरे स्थानान्तरण हुआ उससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् 1960 में खाद्य सुरक्षा के सन्दर्भ में भारतीय कृषिक समाज को हरित क्रान्ति से परिचित करवाया गया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय कृषिक समाज में नवीन तकनीकी, निवेश के नये साधनों से जहाँ एक ओर उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई, वहीं दूसरी ओर कृषि क्षेत्र में बाजार, व्यावसायीकरण के वर्चस्व में भी बढ़ोत्तरी हुई। तत्पश्चात् 1990 की आर्थिक सुधार नीति अपनाने के पश्चात्, भारतीय कृषिक व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध वैश्विक बाजार से स्थापित हो गया तथा विश्व बाजार के उतार चढ़ाव से यह सीधे तौर पर प्रभावित होने लगा।

पीजेन्ट्री को प्रभावित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण घटना है, कृषि के व्यावसायीकरण की प्रक्रिया। जिसे भारतीय कृषिक व्यवस्था के अन्तर्गत दो ऐतिहासिक सन्दर्भों में देखा जा सकता है– पहली प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के दौरान जिसका वर्णन ए0आर0देसाई (1976) ने अपने अध्ययन "Social Background of Indian Nationalism" में किया है। इस समयावधि में कृषि के व्यावसायीकरण में प्रमुख कारणों में अधिक से अधिक कर वसूली करना तथा उद्योगों के लिये कच्चे माल प्राप्त करने की आवश्यकता थी।

दूसरे चरण की प्रक्रिया 1960 में हरित क्रांन्ति के आगमन के बाद देखी जा सकती है। इसके अन्तर्गत आधुनिक कृषि संसाधन जैसे कि HYVs ट्रैक्टर्स, थ्रेशर्स, पेस्टीसाइड्स आदि किसानों को सब्सिडी रेट पर उपलब्ध कराये जाते थे। इस कार्यक्रम की शुरूआत प्रारम्भ में उन स्थानों पर की गयी, जहाँ किसान अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में थे तथा कृषि सम्बन्धी संसाधन जैसे कि जल, बिजली आदि सरलता से उपलब्ध था।

इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के पश्चात् कृषि क्षेत्र में व्यावसायीकरण की प्रक्रिया का तीब्रता से प्रसार हुआ। किसान पूरी तरह से बाजार के आश्रित हो गया, न केवल निवेश के संसाधनों की प्राप्ति के लिये बल्कि उत्पादन को बेचने के लिये थी।

इस व्यावसायीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत, सबसे ज्यादा प्रभाव लघु और मध्यम वर्गीय किसान पर पड़ा क्योंकि प्रारम्भ में निवेश संसाधन सब्सिडी रेट पर उपलब्ध कराये जा रहे थे, लेकिन कुछ समय पश्चात् विशेष रूप से आर्थिक सुधार नीति के पश्चात् सरकार की प्राथमिकता निजी क्षेत्र की ओर स्थानान्तरित हो गयी।

व्यावसायीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत नगरी फसलों का प्रभाव बढ़ने से खाद्य फसलों का स्थानान्तररण नगरी फसलों ने ले लिया; जिससे पर्यावरण पारिस्थितिकी को काफी आति पहुँची। इन सबके पीछे एकमात्र उद्देश्य था अधिक से अधिक लाभ कमाना। इसका भूमि की उर्वरता तथा भूजल स्तर पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। (गिल व लखविन्दर 2006, वासवी, ए0आर0 1999)

इसी क्रम में एक और प्रक्रिया ऋण लेने की प्रवृत्ति में बढोत्तरी हुई, हालांकि ऋण लेने की प्रघटना कोई नई नहीं थी, किन्तु व्यावसायीकरण की प्रक्रिया तथा आधुनिक नवीन निवेश पद्धतियों के कारण इसमें तेजी से बढोत्तरी हुई। ऋणग्रस्ता की बढ़ती दर का प्रमुख कारण, व्यावसायीकरण की प्रक्रिया व सरकार की प्राथमिकता में सरकारी क्षेत्रों के स्थान पर निजी क्षेत्रों के महत्व का बढ़ना था। इन सबका सीधा सम्बन्ध किसानों की बढ़ती आत्महत्या से था। हरित क्रान्ति, आधुनिकीकरण और व्यावसायीकरण के व्यापक प्रभाव को इसी बात से समझा जा सकता है कि वे सभी राज्य जहाँ कभी उत्पादन दर सबसे उच्च स्तर पर पहुँच चुका था, वहीं पर आत्महत्या दर भी सबसे अधिक तीव्र रही। सीधे अथवा कह सकते हैं कि किसानों की आत्महत्या का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कृषि में बाजार का समावेश, व्यावसायीकरण की प्रक्रिया तथा, कृषि का आधुनिकीकरण मतलब कृषि में नवीन तकनीकि का समावेशन, निवेश के नवीन संसाधनों के प्रयोग से कृषि लागत का बढना तथा LPG Policy अपनाने के बाद राज्य द्वारा किसानों को दिये जाने वाली सब्सिडी की कटौती प्रमुख कारणों में से एक हैं।

पहले जो कृषक अपने और अपने परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करता था वहीं अब वह बाजार की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन करता है। नगदी फसल का बढता प्रयोग, उर्वरक, पेस्टीसाइड्स, नवीन तकनीकी का समावेश जैसे कि ट्रैक्टर्स, हार्वेस्त्र, थ्रेशर और सिंचाई में नवीन पद्धतियों जैसे कि नगर, ट्यूबवेल आदि के कारण कृषि लागत में वृद्धि होना; इन सभी कारणों से कृषक वर्ग की औपचारिक और अनौपचारिक स्रोतो पर लोन के सन्दर्भ मे निर्भरता बढ़ती गयी। इसके अतिरिक्त कृषि से जुड़ी अनिश्चितता; चूँकि कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जो अनिश्चितता से भरा

हुआ है। तेजी से गिरता भू–जलस्तर, मिट्टी की उर्वरता में कमी आना (अत्यधिक उर्वरक व रासायनिक कीटनाशको के अत्यधिक प्रयोग के कारण), फसल नष्ट होने की घटनाओं में इजाफा होना, इन सभी कारणों में वृद्धि हुई है। आये दिन फसल खराब होना, न्यूनतम समर्थन मूल्य पर उत्पादन की बिक्री न हो पाना जो कि सरकार द्वारा तय किया जाता है इसका लघु व सीमान्त किसानों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। आये दिन फसल खराब होना तथा वैकल्पिक रोजगारों की अनुपलब्धता के कारण भूमि से सम्बन्धित किसान विशेष रूप से लघु व मध्यम वर्गीय, आज इस स्थिति में भी नहीं रहा कि अपने और अपने परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सकें।

1990 की आर्थिक सुधार नीति का भी प्रमुख योगदान रहा है, कृषिक समाज को प्रभावित करने में। राज्य की प्राथमिकता कृषि क्षेत्र तय किये जाने के पश्चात् कृषि क्षेत्र हाशिये पर चला गया। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था होने के कारणा भारतीय कृषिक उत्पादन वैश्विक स्तर के उत्पादन के साथ प्रतिस्पर्धा में आया तथा वैश्विक मूल्य प्रणाली से, यहाँ की मूल्य प्रणाली भी सीधा प्रभावित होना प्रारम्भ हुयी जिससे यहाँ के किसानों को अधिकांशतः विशेष रूप से लघु व मध्यम वर्गीय, अपनी उपज का न्यूनतम मूल्य ही प्राप्त होता था।

जैसे कि पहले भी यह बात कही गयी है कि भारतीय गाँवों का मूलाधार संयुक्त परिवार, घनिष्ट रूप से अन्तः सम्बन्धित नातेदारी व्यवस्था और जजमानी व्यवस्था रहे हैं। लेकिन उपर्युक्त विश्लेषित इन सभी प्रक्रियाओं के चलते इन सबमें आपसी अन्तः सम्बन्ध कमजोर होने लगे जैसा कि आर0एस0 देशपाण्डे (2002) में अध्ययन किया और यह पाया कि एक व्यक्ति किसी भी प्रकार के सामाजिक–आर्थिक–मनोवैज्ञानिक तनाव को झेलने की क्षमता रखता है यदि पारिवारिक व सामुदायिक अन्तः सम्बन्धों में परस्पर घनिष्ठता रती है, तो इसी प्रकार से दुर्खीम ने भी अपने कार्य में, समाज में एकीकरण तथा आत्महत्या दर के बीच सम्बन्ध स्थापित किया है। इसी प्रकार से जजमानी सम्बन्धी के विषय में विलियम वाइजर का कार्य भी महत्वपूर्ण है। जिसमें उन्होंने अन्तः जातीय सम्बन्धों की प्रकार्यात्मकता पर बल देते हुये, तनाव झेलने की व्यक्ति की क्षमता पर बल दिया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार से हरितक्रांन्ति, नवीन तकनीकि संसाधनों का समावेश तथा बढ़ती कृषि लागत ने एक ओर यहाँ उत्पादन में बढ़ावा तो किया लेकिन साथ ही कृषिक जगत में अनेक प्रकार के संकट उत्पन्न किये विशेष रूप से लघु व मध्यम वर्गीय किसानों में। मौसमी परिवर्तन, विशेष रूप से वर्षा जल में कमी भी एक महत्वपूर्ण कारण रहा है, कृषिक संकट के सन्दर्भ में क्योंकि भारत में अभी भी अधिकांश इलाके वर्षा जल पर आश्रित है। जल की कमी तथा खाद्य सुरक्षा का मुददा भी आपस में अन्तःसम्बन्धित है, जिसके बारे में ब्रायन आई बेकर (2017) ने विस्तार से बात की है ।

इन सब परिस्थितियों में विशेष रूप से लघु व मध्ययवर्गीय किसान/ कृषिक मजदूर इस स्थिति में भी नहीं होते कि अपनी प्रतिदिन की न्यूनतम आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सके। हालाँकि प्रशासन द्वारा पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम तथा अन्त्योदय अन्य योजना जैसे कार्यक्रमों के संचालन के माध्यम से हाशियें पर स्थित परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है। किन्तु विभिन्न विद्वानों के अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि पी0डी0एस0 सिस्टम द्वारा प्रदान किया जाने वाला अनाज उन परिवारों के लिये अपर्याप्त है जो आकार में बड़े हैं।

विशेष रूप से लघु व मध्यमवर्गीय किसान तथा कृषिक मजदूर जिनकी जोते छोटी आकार की हैं, खाद्य असुरक्षा का सामना करने को विवश हैं। क्योंकि एक फसल चक्र का असफल होना विविध कारणों से, फिर अपर्याप्त वर्षा, सूखा या बाढ़ जैसे अन्य कारण, ऋणों की वापसी न कर पाना उन्हें Credit market से निष्कासित करती है तथा सामाजिक सम्बन्धों से भी।

न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति तथा जीवन निर्वाह के लिये कृषक अपनी जमीन बेचने को विवश होते हैं; विशेष रूप से लघु व सीमान्त कृषक वर्ग (जोधक 2006)/जैसा कि लेनिन (2009) ने भी अपने कार्य में कहा है रसियन पीजेन्ट्री के सन्दर्भ में कि मिडिल पीजेन्ट्री सदा अनिश्चितता की स्थिति में रहती है, यदि उनका उत्पादन सफल होता है तो वह अच्छी स्थिति में रहते हैं; यदि उनका उत्पादन असफल होता है तो परिणाम के रूप में विकृषकीकरण, प्रवास तथा फैमिनाइजेशन ऑफ एग्रीकल्चर की प्रक्रिया देखी जा सकती है। वर्तमान समय में भूमि पर्याप्त व केवल मात्र साधन नहीं रहा, जिससे कृषक अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें इसके लिये उन्हें शहरी क्षेत्रों में प्रवास के लिये विवश होना पड़ता है ताकि वे अपनी और अपने परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु न्यूनतम संसाधन जुटाने में सक्षम हो सके। प्रत्येक व्यक्ति इन दशाओं से गुजरने में सक्षम नहीं होता है, कुछ प्रवास कर जाते है, कुछ सक्षम होते है जो अन्य दूसरे रोजगार करना प्रारम्भ कर देते हैं जैसे दुकानदारी करना, कुछ वेज लेवर्स बन जाते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं, जो सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक कारकों के चलते आत्महत्या जैसे कदम उठाने को विवश हो जाते हैं।

समकालीन भारतीय राजनीकि परिदृश्य में, कृषक समाज के सन्दर्भ में अपूर्ववर्ती परिवर्तन देखे जा सकते हैं स्वतंत्रता के दौरान होने वाले आन्दोलनों में कृषकों की सहभागिता के पश्चात् व माँगों की पूर्ति के लिये कार्ल मार्क्स जैसे विचारकों जिनके अनुसार कृषकों के समक्ष वर्ग चेतना का अभाव होता है जो कि, पहले ही खारिज की जा चुकी हैं अनेक विद्वानों द्वारा, पुनः अब कृषक अपने असन्तोष को विद्रोह के नये माध्यमों से राज्य के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं जैसे कि अपने उत्पादन को सड़कों पर फैकना, सड़कों पर मीलों नंगे पैर चलना आदि।

कृषक अपने हितों को लेकर मूलभूत अधिकारों को लेकर पूर्णरूप से जागृत हैं यह इस समूह की ओर से एक पहल मात्र है क्योंकि अब आत्महत्या जैसे मार्ग अपनाकर वे अपनी समस्याओं का समाधान नहीं चाहते है बल्कि वे एक नया समाधान चाहते हैं। कह सकते हैं राज्य

की ओर से वे अपने मूलभूत अधिकारों की ओर पहल चाहते हैं। कहीं न कहीं वर्तमान सरकार ने अपनी नीतियों के केन्द्र में कृषक को समाहित किया है तथा जैविक खेती की ओर कदम बढ़ाया है लेकिन इसका परिणाम आने में अभी विलम्ब है।

यह अच्छा संकेत माना जा सकता है कि लोकतांत्रिक देश में जो कल तक निष्क्रिय रिसीवर्स के रूप में देखे जाते थे वह अब सक्रिय सहभागी के रूप में अपने कल्याण के लिये राज्य के समक्ष प्रस्तुत है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *बर्नस्टीन हेनरी 2001. द पीजेन्ट्री इन ग्लोबल कैपिटलिज्म : हू, व्हेयर एण्ड व्हाई? सोशियलिस्ट रजिस्टर.*
2. *वानहॉटे एरिक (2016). पीजेन्ट्स पीजेन्ट्रीस एण्ड डीपेजेन्टाइजेषन इन द कैपिटलिस्ट वर्ल्ड सिस्टम. रिसर्चगेट.*
3. *बेकर ब्रायन आई (2017). वाटर एन्ड फूड सिक्योरिटी इन ए चेन्जिंग वर्ल्ड. मन्थली लेबर रिव्यू.*
4. *देसाई ए. आर. 2012. सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज्म. मैकमिलन पब्लिकेशन्स.*
5. *देसाई ए.आर.1988. रूरल सोशियॉलॉजी इन इण्डिया. पॉपुलर प्रकाशन.*
6. *लेनिन. 2009. द डेवेलपमेन्ट ऑफ कैपिटलिज्म इंन रसिया, वॉल्यूम थ्री. प्रोग्रेस पब्लिशर्स।*
7. *जोधका सुरिन्दर एस. 2006. बीयॉन्ड क्राइसिसः रिथिन्किंग कन्टेम्परेरी पंजाब एग्रिकल्चर. इकॉनामिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली. वॉल्यूम 41, नं0 16, पृष्ठ संख्या–1530–1537*
8. *गिल अनीता व लखविन्दर सिंह. 2006. फार्मर्स स्युसाइड्स एण्ड रिस्पांस ऑफ पब्लिक पॉलिसीः एविडेन्स. डायग्नोसिस एण्ड आल्टरनेटिवस फ्रॉम पंजाब. इकॉनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वॉ. 41, नं0 26, पृष्ठ संख्या–2762–2768.*
9. *वासवी ए0आर0 1999. एग्रोरियन डिस्ट्रेस इन बीदर : मार्केट, स्टेट एण्ड स्युसाइड्स, इकॉनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, वॉ0 34, नं0–32, पृष्ठ संख्या–2263–2268.*
10. *थॉर्नर डेनियल, बेसिले केरबले, आर0ई0एफ0 स्मिथ, 1986. ए0बी0 चायनाव आन द थ्योरी ऑफ पीजेन्ट इकॉनामी द यूनिवर्सिटि आफ विस्कान्सिन प्रेस.*
11. *बेन्डिक्स राइनहार्ड. 1977 मैक्स वेबर. इन इन्टेलेम्चुअल पोर्ट्रैट. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीओर्निया प्रेस.*